

राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ

एसबी आपराधिक पुनरीक्षण याचिका संख्या 568/2019

1. लक्ष्मण सिंह उर्फ बंटी पुत्र श्री प्रेम सिंह, उम्र लगभग 41 वर्ष, निवासी मोतीपुरा सदर जिला सवाई माधोपुर राज.
2. देवी सिंह पुत्र इंदर सिंह, उम्र लगभग 34 वर्ष, निवासी गुडला तह . बामनवास जिला. सवाई माधोपुर राज.
3. वरुण सिंह पुत्र हरसहाय , उम्र लगभग 36 वर्ष, निवासी बृजबास गंगापुर सिटी सदर जिला. सवाई माधोपुर राज.
4. बाबूलाल गुर्जर उर्फ बृजमोहन पुत्र मल जी, निवासी गुर्जर बड़ौदा तह . बामनवास जिला. सवाई माधोपुर राज.
5. बदन सिंह पुत्र हरसहाय गुर्जर , निवासी बाहुबाद तेह . गंगापुर सिटी थाना गंगापुर सिटी सदर जिला. सवाई माधोपुर राज.
6. तपेन्द्र पुत्र पुखराज , निवासी महरामदा तह . बामनवास जिला. सवाई माधोपुर राज.
7. नितेश उर्फ बब्लू पुत्र बाबूलाल उर्फ बृजमोहन गुर्जर , निवासी, गुर्जर बड़ौदा तह . बामनवास जिला. सवाई माधोपुर राज.
8. नरेन्द्र उर्फ चपा पुत्र पुखराज , निवासी महरामदा तह . बामनवास जिला. सवाई माधोपुर राज.

9. कुंजी लाल गुर्जर पुत्र राजहंस , निवासी ब्रह्मवास गंगापुर सिटी जिला सवाई माधोपुर राज.

----याचिकाकर्ता

बनाम

1. राजस्थान राज्य, पीपी के माध्यम से
2. वेदप्रकाश आर्य पुत्र हुकुम चंद आर्य, निवासी घी वालों की गली गंगापुर सिटी जिला सवाई माधोपुर राज.

----प्रतिवादी

-

याचिकाकर्ता(यों) की ओर से : श्री राजवीर सिंह, एडवोकेट
श्री पीएल सैनी, एडवोकेट
प्रतिवादी(ओं) के लिए : श्री अतुल शर्मा, पीपी
श्री संकल्प सोगानी , सलाहकार.
सुश्री मुस्कान वर्मा , सलाहकार।

-

माननीय श्रीमान. जस्टिस अनूप कुमार ढांड

आदेश

आरक्षित तिथि : 16/04/2024

उच्चारण तिथि : 23/04/2024

प्रकाशनीय

आपराधिक प्रक्रिया का संज्ञान और उद्देश्य:

"आपराधिक कानून पूर्वानुमेयता प्रदान करके कानून और व्यवस्था बनाए रखने का उद्देश्य पूरा करता है। यह व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करता है। आपराधिक कानून झगड़ते नागरिकों के बीच संघर्षों और विवादों को सुलझाना संभव बनाता है। यह शिकायतों के निपटारे का एक शांतिपूर्ण और व्यवस्थित तरीका प्रदान करता है। यह समाज को उन अपराधियों से भी सुरक्षा प्रदान करता है जो दूसरों को नुकसान पहुँचाते हैं। इसके लिए दंडात्मक कानून हैं जो कुछ कार्यों को अपराध घोषित करके और दंड से दंडनीय घोषित करके उन्हें करने पर रोक लगाते हैं। दूसरे शब्दों में, आपराधिक कानून अपराधों से निपटता है और समाज को अराजकता की स्थिति में जाने से बचाने में मदद करता है।"

कानून का यह भाग मूल कानून है, लेकिन इसे लागू करने के लिए किसी व्यक्ति को अधिकृत किया जाना आवश्यक है जो एक निश्चित प्रक्रिया अपनाकर दोषियों को दंडित कर सके। इस पहलू पर कानून के दूसरे भाग, यानी प्रक्रियात्मक कानून, द्वारा विचार किया जाता है।

प्रक्रियात्मक कानून, मूल आपराधिक कानून के कार्यान्वयन के लिए तंत्र प्रदान करता है। प्रक्रियात्मक कानूनों के अभाव में, मूल कानून किसी काम के नहीं हैं। इसके बिना कोई भी यह नहीं जान पाएगा कि अपराधियों पर कैसे और किसके द्वारा मुकदमा चलाया जाएगा। वास्तव में,

दोनों कानून एक-दूसरे के पूरक हैं। प्रक्रियात्मक कानून, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में निहित है।

दंड प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए और संविधान के अनुच्छेद 22 की भावना का पालन करते हुए अभियुक्त को निष्पक्ष सुनवाई प्रदान करना है। न्याय प्रदान करने के लिए विभिन्न प्रक्रियाओं का पालन करना आवश्यक है। इसमें पूर्व-परीक्षण प्रक्रिया और विभिन्न मुकदमों की प्रक्रियाएँ शामिल हैं। मुकदमों की प्रक्रिया अपराध का संज्ञान लेकर, फिर कार्यवाही शुरू करके और अंत में संहिता में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करते हुए निर्णय पर पहुँचकर शुरू की जाती है।

कॉग्निजेंस शब्द की उत्पत्ति पुराने फ्रांसीसी शब्द " कॉनैसेंस " से हुई है जिसका अर्थ है "पहचान, ज्ञान, जानकारी, परिचय"। यह शब्द " कोनोइस्ट्रे " से भी लिया गया है जिसका अर्थ है "जानना"। यह लैटिन शब्द " कॉग्नोसिस " से भी लिया गया है, जहाँ कॉन का अर्थ है "साथ" और "ग्नोसिस" का अर्थ है "जानना"।

दंड प्रक्रिया संहिता में 'संज्ञान' शब्द की परिभाषा नहीं दी गई है, लेकिन संज्ञान का अर्थ कई पूर्व उदाहरणों और न्यायिक निर्णयों से लिया

गया है। संज्ञान का शब्दकोशीय अर्थ है "ध्यान में रखना", "ध्यान देना", "ज्ञान प्राप्त करना", "किसी चीज़ के बारे में ज्ञान होना"।

लेक्सिकॉन वेबस्टर डिक्शनरी में संज्ञान शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है, "मानसिक अवलोकन या जागरूकता की सीमा, जागरूक होने का तथ्य, ज्ञान, (कानून) किसी दिए गए मामले से निपटने के लिए न्यायालय को दी गई शक्तियां, अधिकार क्षेत्र।"

ब्लैक लॉ डिक्शनरी में संज्ञान का अर्थ इस प्रकार दिया गया है, संज्ञान :- अधिकार क्षेत्र, या अधिकार क्षेत्र का प्रयोग, या कारणों का परीक्षण करने और निर्धारित करने की शक्ति; किसी मामले की न्यायिक जांच, या इसे बनाने की शक्ति और अधिकार।

सामान्यतः "संज्ञान" का अर्थ 'ज्ञान' या 'सूचना' होता है, और 'अपराध का संज्ञान लेना' का अर्थ है किसी अपराध के कथित घटित होने की सूचना प्राप्त करना, या उसके बारे में जागरूक होना। न्यायालय को मुकदमे की कार्यवाही शुरू करने से पहले अपराध का संज्ञान लेना होगा। संज्ञान लेने में किसी प्रकार की औपचारिक कार्रवाई शामिल नहीं होती, बल्कि मजिस्ट्रेट द्वारा कानूनी कार्यवाही के उद्देश्य से किसी अपराध के संदिग्ध घटित होने पर विचार करते ही संज्ञान लिया जाता है। इसलिए, संज्ञान लेना न्यायिक विवेक का प्रयोग है।"¹

तथ्यात्मक मैट्रिक्स:

1. सीआरपीसी की धारा 401 के साथ धारा 397 के तहत निहित पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का आह्वान करते हुए , याचिकाकर्ताओं ने सत्र मामला संख्या 9/2018 में विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश संख्या 17, जयपुर महानगर, जयपुर द्वारा पारित दिनांक 11.02.2019 के आक्षेपित आदेश की वैधता और वैधानिकता पर शिकायतकर्ता-प्रतिवादी (इसके बाद "शिकायतकर्ता" के रूप में संदर्भित) द्वारा

1. चंडीगढ़ न्यायिक अकादमी के संकाय सदस्य श्री प्रदीप मेहता द्वारा लिखित "अपराधों का संज्ञान" पर लेख।
धारा 193 सीआरपीसी के तहत दायर आवेदन को अनुमति दी गई है और आईपीसी की धारा 148, 323, 341, 325, 379, 307 के साथ धारा 149 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए याचिकाकर्ताओं के खिलाफ संज्ञान लिया गया है और याचिकाकर्ता संख्या 4 से 9 के खिलाफ गिरफ्तारी वारंट जारी किए गए हैं।

याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुतियां:

2. आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ पुलिस स्टेशन मानसरोवर , जयपुर में शिकायतकर्ता-प्रतिवादी संख्या 861/2017 के तहत एक एफआईआर दर्ज की गई थी , लेकिन जांच के बाद, केवल याचिकाकर्ताओं, अर्थात् लक्ष्मण

सिंह उर्फ बंटी, देवी सिंह और वरुण सिंह के खिलाफ आईपीसी की धारा 323, 341, 325, 308, 379 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए अतिरिक्त मुख्य मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट संख्या 6, जयपुर मेट्रोपोलिटन, जयपुर की अदालत में आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया, जिन्होंने दिनांक 05.10.2018 के आदेश के तहत उपरोक्त अपराधों के लिए उपरोक्त तीन व्यक्तियों के खिलाफ संज्ञान लिया। वकील ने प्रस्तुत किया कि चूंकि आईपीसी की धारा 308 के तहत दंडनीय अपराध सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था, इसलिए मामला सत्र न्यायाधीश, जयपुर मेट्रोपोलिटन, जयपुर की अदालत को सौंप दिया गया, जिन्होंने इसे अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश संख्या 17, जयपुर मेट्रोपोलिटन, जयपुर की अदालत में स्थानांतरित कर दिया । वकील ने प्रस्तुत किया कि उपरोक्त मामले को सौंपने के बाद, विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने मामले को आरोप तय करने के लिए पोस्ट किया। इस स्तर पर, शिकायतकर्ता ने सभी आरोपियों, यानी याचिकाकर्ता नंबर 1 से 3 और बाकी आरोपी व्यक्तियों (याचिकाकर्ता नंबर 4 से 9) के खिलाफ संज्ञान लेने के लिए धारा 193 सीआरपीसी के तहत एक आवेदन प्रस्तुत किया , जिन्हें आईपीसी की धारा 148, 323, 341, 325, 379, 307 के साथ धारा 149 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए आरोप पत्र नहीं दिया गया था। वकील ने प्रस्तुत किया कि प्रतिवादियों द्वारा दायर उक्त आवेदन को 11.02.2019 के आदेश के अनुसार अनुमति दी गई और

सभी आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ अपराधों के लिए संज्ञान लिया गया है, जैसा कि ऊपर कहा गया है और याचिकाकर्ता नंबर 4 से 9 के खिलाफ गिरफ्तारी वारंट भी जारी किए गए हैं।

3. वकील ने दलील दी कि एक बार जब विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा तीन आरोपियों, लक्ष्मण सिंह उर्फ बंटी, देवी सिंह और वरुण सिंह (याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3) के खिलाफ संज्ञान ले लिया गया, तो अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के पास धारा 307 और भारतीय दंड संहिता के तहत दंडनीय अन्य अपराधों के तहत उनके खिलाफ संज्ञान लेने का कोई कारण या अवसर उपलब्ध नहीं था। वकील ने दलील दी कि ऐसा आदेश आदेश की समीक्षा के समान है जो सीआरपीसी की धारा 362 के अनुसार स्वीकार्य नहीं है। वकील ने आगे दलील दी कि मामले की गहन जांच के बाद, जांच एजेंसी को बाकी आरोपियों, अर्थात् बाबूलाल की संलिप्तता नहीं मिली। गुर्जर उर्फ बृजमोहन, बदन सिंह, तपेंद्र, नितेश उर्फ बबलू, नरेंद्र उर्फ चापा और कुंजी लाल गुर्जर, और इसीलिए, उनके खिलाफ कोई आरोप-पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया। वकील ने कहा कि उनके खिलाफ संज्ञान लेने के लिए कोई सबूत उपलब्ध नहीं था और तब भी शिकायतकर्ता प्रतिवादी द्वारा दायर आवेदन को अनुमति दी गई है। वकील ने कहा कि विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश को सीआरपीसी की धारा 319 के चरण तक इंतजार करना चाहिए था। क्योंकि आवेदन की अनुमति

देने के समय, इन छह व्यक्तियों के खिलाफ संज्ञान लेने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं थी। वकील ने कहा कि इन परिस्थितियों में, 11.02.2019 का आरोपित आदेश कानून की नजर में कानूनी रूप से टिकने योग्य नहीं है और इसे रद्द करने और अलग रखने के लिए उत्तरदायी है।

4. अपने तर्कों के समर्थन में, याचिकाकर्ताओं के वकील ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बलवीर सिंह एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य , 2016 एआईआर (एससी) 2266 के मामले में पारित निर्णय पर भरोसा रखा है और प्रस्तुत किया है कि उनके द्वारा यहां दिए गए उपर्युक्त प्रस्तुतियों के मद्देनजर, याचिका को अनुमति दी जा सकती है।

प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुतियां:

5. इसके विपरीत, शिकायतकर्ता-प्रतिवादी के विद्वान वकील और विद्वान सरकारी अभियोजक ने याचिकाकर्ताओं के वकील द्वारा उठाए गए तर्कों का विरोध किया और कहा कि दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपराध का संज्ञान लिया जाता है, अपराधियों का नहीं। वकील ने कहा कि सभी आरोपियों के खिलाफ आईपीसी की धारा 148, 323, 341, 325, 379, 307 और धारा 149 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए संज्ञान लेने के लिए रिकॉर्ड पर पर्याप्त सबूत उपलब्ध थे, लेकिन पुलिस ने केवल कुछ आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया है, अर्थात् लक्ष्मण सिंह उर्फ

बंटी, देवी सिंह और वरुण सिंह। वकील ने कहा कि बाकी आरोपियों के खिलाफ पर्याप्त सबूत होने के बावजूद, पुलिस द्वारा उनके खिलाफ कोई आरोप पत्र दायर नहीं किया गया। वकील ने दलील दी कि घायलों और अन्य चश्मदीद गवाहों के बयानों और रिकॉर्ड पर उपलब्ध मेडिकल रिपोर्ट के अनुसार, अभियुक्तों के खिलाफ धारा 307 और भारतीय दंड संहिता के तहत दंडनीय अन्य अपराधों के लिए संज्ञान लेने का प्रथम दृष्टया मामला बनता है। वकील ने दलील दी कि इन परिस्थितियों में, विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने शिकायतकर्ता द्वारा धारा 193 सीआरपीसी के तहत दायर आवेदन को सही माना है। वकील ने आगे दलील दी कि इन परिस्थितियों में, इस न्यायालय का हस्तक्षेप उचित नहीं है।

6. अपने तर्कों के समर्थन में उन्होंने दो निर्णयों पर भरोसा जताया है:

(I) आर.एन. अग्रवाल बनाम आर.सी. बंसल (2015) 1 एस.सी.सी.

48 में रिपोर्ट किया गया।

(II) शोदान सिंह एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य 2017 (2)

आरएलडब्लू 1565 (राजस्थान) में रिपोर्ट किया गया।

7. वकील ने कहा कि उपरोक्त प्रस्तुतियों के मद्देनजर, तत्काल याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

विश्लेषण, चर्चा और तर्क :-

8. बार में प्रस्तुत किए गए तर्कों को सुना और उन पर विचार किया तथा रिकार्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।
9. मूलतः, दिनांक 11.02.2019 के आदेश को दो भागों में चुनौती दी गई है, अर्थात् याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के विरुद्ध दो बार संज्ञान लेना तथा याचिकाकर्ता संख्या 4 से 9 के विरुद्ध संज्ञान लेना, जिनके विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया गया था।
10. यह न्यायालय सबसे पहले याचिकाकर्ता संख्या 4 से 9 के विरुद्ध पारित दिनांक 11.02.2019 के संज्ञान आदेश को चुनौती के दूसरे भाग पर निर्णय लेगा।
11. यह तथ्य विवाद में नहीं है कि अभियुक्त याचिकाकर्ता संख्या 4 से 9 के नाम एफआईआर में और साथ ही सूचक-वेद प्रकाश आर्य के बयानों में उल्लेखित हैं और घटना के लिए 10-12 अभियुक्तों के खिलाफ आरोप लगाए गए हैं। यह तथ्य विवाद में नहीं है कि जांच के बाद, पुलिस ने केवल याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के खिलाफ आरोप पत्र पेश किया है और बाकी आरोपियों, यानी याचिकाकर्ता संख्या 4 से 9 को छोड़ दिया है। यह तथ्य भी विवाद में नहीं है कि विद्वान अतिरिक्त मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट संख्या 6, जयपुर मेट्रोपॉलिटन ने याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के खिलाफ आईपीसी की धारा 323, 341, 325, 308 और 379 के तहत

दिनांक 05.10.2018 के आदेश के तहत संज्ञान लिया और मामले को सत्र न्यायाधीश, जयपुर मेट्रो की अदालत में भेज दिया क्योंकि आईपीसी की धारा 308 के तहत अपराध सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था, जिन्होंने इसे अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश संख्या 17, जयपुर मेट्रोपॉलिटन, जयपुर की अदालत में स्थानांतरित कर दिया। इसके बाद, मामले को आरोपों पर बहस सुनने के लिए पोस्ट किया गया था यहां यह ध्यान देने योग्य है कि दिनांक 05.10.2018 के संज्ञान लेने के आदेश को शिकायतकर्ता-प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा किसी भी सक्षम न्यायालय के समक्ष कभी चुनौती नहीं दी गई थी और उक्त आदेश अंतिम हो गया है।

12. बाद के चरण में, यानी 24.01.2019 को, शिकायतकर्ता ने धारा 193 सीआरपीसी के तहत सभी आरोपियों के खिलाफ आईपीसी की धारा 307 और अन्य अपराधों के तहत संज्ञान लेने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया। दलीलें सुनने के बाद, विद्वान ट्रायल जज ने 11.02.2019 के आदेश के तहत आवेदन को अनुमति दी और फिर से आईपीसी की धारा 149 के साथ धारा 148, 323, 325, 379 और 307 के तहत अपराधों के लिए याचिकाकर्ता नंबर 1 से 3 के खिलाफ संज्ञान लिया और उन्हीं अपराधों के लिए, याचिकाकर्ता नंबर 4 से 9 के खिलाफ संज्ञान लिया गया, जिनके खिलाफ पुलिस ने आरोप पत्र दायर नहीं किया था।

13. दिनांक 11.02.2019 के आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ताओं ने यह याचिका दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

14. याचिकाकर्ताओं की दलीलों का सार यह है कि पहली बार मजिस्ट्रेट ने 05.10.2018 के आदेश के तहत अपराध का संज्ञान लिया और मामले को सत्र न्यायालय को सौंप दिया और 11.02.2019 को सभी आरोपियों के खिलाफ फिर से संज्ञान लिया गया, जबकि धारा 319 सीआरपीसी के चरण तक इंतजार किए बिना वर्तमान याचिकाकर्ताओं के खिलाफ संज्ञान लेने का कोई कारण या अवसर नहीं था। वकील का दूसरा तर्क यह है कि अपराध का संज्ञान लिया जाता है, अपराधियों का नहीं और जब अपराध का संज्ञान 05.10.2018 को ही ले लिया गया है, तो याचिकाकर्ताओं के खिलाफ संज्ञान लेने वाला 11.02.2019 का बाद का आदेश कानून की नजर में टिकने योग्य नहीं है।

15. रणजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य (1998) 7 एससीसी 149, मेसर्स स्विन लिमिटेड बनाम दिल्ली राज्य और अन्य (2001) 6 एससीसी 670, राजिंद्र प्रसाद बनाम बशीर और अन्य (2001) 8 एससीसी 522, किशुन सिंह बनाम बिहार राज्य (1993) 2 एससीसी 16 और किशोरी सिंह बनाम बिहार राज्य (2004) 13 एससीसी 11 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में सत्र न्यायालय द्वारा धारा 193

सीआरपीसी के तहत संज्ञान लेने के चरण और शक्ति के बारे में परस्पर विरोधी विचार थे। इस मुद्दे पर स्पष्टता प्राप्त करने के लिए, मामले को धर्मपाल (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की संवैधानिक पीठ को भेजा गया, जहां निम्नलिखित छह प्रश्न विचार के लिए आए:

“(i) क्या पुलिस रिपोर्ट से यह पता चलने पर कि मामला सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है, मामले को सत्र न्यायालय को सौंपने के बाद, कमिटिंग मजिस्ट्रेट की कोई अन्य भूमिका है?

ii) यदि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से असहमत है और उसे विश्वास है कि रिपोर्ट के कॉलम 2 में जिन व्यक्तियों को रखा गया है, उनके विरुद्ध भी मुकदमा चलाया जा सकता है, तो क्या उसके पास उनके विरुद्ध भी समन जारी करने का अधिकार है ताकि पुलिस रिपोर्ट में दर्ज मामले के संबंध में उनके नाम नफे सिंह के साथ शामिल किए जा सकें?

iii) क्या अपीलकर्ताओं के विरुद्ध सम्मन जारी करने का निर्णय लेने के बाद, मजिस्ट्रेट के लिए यह आवश्यक था कि वह शिकायत मामले की प्रक्रिया का पालन करे तथा उन्हें सत्र न्यायालय में सुनवाई के लिए भेजने से पहले साक्ष्य ले या क्या ऐसी प्रक्रिया का पालन किए बिना उनके विरुद्ध सम्मन जारी करना न्यायोचित था?

iv) क्या सत्र न्यायाधीश मूल अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय के रूप में धारा 193 सीआरपीसी के तहत समन जारी कर सकता है?

(v) मामला सत्र न्यायालय को सौंपे जाने पर, क्या सत्र न्यायाधीश संहिता की धारा 193 के अंतर्गत अलग से समन जारी कर सकता है या उसे संहिता की धारा 319 के अंतर्गत समन जारी करने के लिए प्रतीक्षा करनी होगी?

vi) क्या रणजीत सिंह मामले (सुप्रा) ने, जिसने किशुन सिंह मामले (सुप्रा) के निर्णय को रद्द कर दिया, सही निर्णय दिया या नहीं?

16. प्रश्न संख्या 4, 5 और 6, जो इस याचिका में शामिल विवाद पर निर्णय लेने के लिए प्रासंगिक हैं, और जिनका उत्तर माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ द्वारा धर्मपाल (सुप्रा) मामले में पारित निर्णय के पैरा 37 से 42 में दिया गया था, को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जाता है:

37. प्रश्न 4, 5 और 6 कमोबेश आपस में जुड़े हुए हैं। प्रश्न 4 का उत्तर हाँ में होना चाहिए, अर्थात्, सत्र न्यायाधीश, विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा मामला सौंपे जाने पर, धारा 193 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत समन जारी करने के हकदार थे।

38. संहिता की धारा 193 सत्र न्यायालय द्वारा अपराधों के संज्ञान की बात करती है और निम्नानुसार प्रावधान करती है:

“193. सेशन न्यायालयों द्वारा अपराधों का संज्ञान.- इस संहिता या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अन्यथा अभिव्यक्त रूप से उपबंधित के सिवाय, कोई भी सेशन न्यायालय किसी अपराध का संज्ञान आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में तब तक नहीं लेगा जब तक कि मामला इस संहिता के अधीन किसी मजिस्ट्रेट द्वारा उसे सुपुर्द न कर दिया गया हो।”

इस धारा में मुख्य शब्द हैं कि “कोई भी सत्र न्यायालय आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में किसी अपराध का संज्ञान नहीं लेगा जब तक कि मामला इस संहिता के अंतर्गत किसी मजिस्ट्रेट द्वारा उसे सुपुर्द न कर दिया गया हो।” उपरोक्त प्रावधान में यह आवश्यक है कि सबसे पहले किसी मामले को मजिस्ट्रेट द्वारा सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया जाना चाहिए। दूसरी शर्त यह है कि मामला उसे सुपुर्द किए जाने के बाद ही सत्र न्यायालय आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करते हुए अपराध का संज्ञान ले सकता है। यद्यपि, श्री दवे द्वारा यह सुझाने का प्रयास किया गया है कि धारा 193 में दर्शाया गया संज्ञान किसी अपराध के संज्ञान से नहीं, बल्कि विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित प्रतिबद्धता आदेश से

संबंधित है, हम धारा 193 के स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार की दलील को स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं हैं कि सत्र न्यायालय उक्त धारा के अंतर्गत अपराधों का संज्ञान ले सकता है।

39. यह हमें अगले प्रश्न की ओर ले जाता है कि क्या धारा 209 के अंतर्गत मजिस्ट्रेट को मामला सत्र न्यायालय को सौंपने से पहले अपराध का संज्ञान लेना आवश्यक था। यह सर्वविदित है कि किसी अपराध का संज्ञान केवल एक बार ही लिया जा सकता है। यदि मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान लेता है और फिर मामला सत्र न्यायालय को सौंपता है, तो अपराध का पुनः संज्ञान लेने और उसके बाद समन जारी करने का प्रश्न विधि के अनुरूप नहीं है। यदि अपराध का संज्ञान लिया जाना है, तो यह मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायालय द्वारा लिया जा सकता है। संहिता की धारा 193 की भाषा बहुत स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि एक बार मामला विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा सत्र न्यायालय को सौंप दिए जाने के बाद, सत्र न्यायालय आरंभिक क्षेत्राधिकार और ऐसे क्षेत्राधिकार की धारणा से जुड़ी सभी बातें ग्रहण कर लेता है। इसलिए, धारा 209 के प्रावधानों को इस प्रकार समझा जाना चाहिए कि पुलिस रिपोर्ट से यह निष्कर्ष निकलने पर कि मामला सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है, विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा मामले को सत्र न्यायालय को सौंपने में निष्क्रिय भूमिका निभाई जाती है। न ही

मजिस्ट्रेट द्वारा आंशिक संज्ञान और विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा आंशिक संज्ञान लिए जाने का कोई प्रश्न ही उठता है।

40. इस मामले के इस दृष्टिकोण से, हमें किशुन सिंह मामले (उपर्युक्त) में व्यक्त विचारों से सहमत होने में कोई संकोच नहीं है कि सत्र न्यायालयों को किसी मामले को अपने अधीन करने पर, उन व्यक्तियों के अपराधों का संज्ञान लेने का अधिकार है जिनका नाम अपराधी के रूप में नहीं है, लेकिन जिनकी मामले में संलिप्तता अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से स्पष्ट होती है। अतः, साक्ष्य दर्ज किए बिना भी, धारा 209 के अंतर्गत मामला सौंपे जाने पर, सत्र न्यायाधीश पुलिस रिपोर्ट के कॉलम 2 में दर्शाए गए व्यक्तियों को, उसमें पहले से नामित व्यक्तियों के साथ, मुकदमे में उपस्थित होने के लिए बुला सकते हैं।

41. हम श्री दवे के इस निवेदन को भी स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि सत्र न्यायालय के पास धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत चरण तक प्रतीक्षा करने के अलावा कोई विकल्प नहीं होगा, इससे पहले कि वह उन व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही करे जिनके खिलाफ सत्र न्यायालय को मामला सौंपते समय विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा भेजे गए केस पत्रों में निहित सामग्रियों से प्रथम दृष्टया मामला बनता है।

42. इस आशय के संदर्भ कि क्या रणजीत सिंह के मामले (सुप्रा) में निर्णय किशुन सिंह के मामले (सुप्रा) में सही था या नहीं, का उत्तर यह मानते हुए दिया गया है कि किशुन सिंह के मामले में निर्णय सही निर्णय था और विद्वान सत्र न्यायाधीश, प्रारंभिक अधिकार क्षेत्र के न्यायालय के रूप में कार्य करते हुए, विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित कमिटल आदेश के परिणामस्वरूप उन्हें प्रेषित रिकॉर्ड के आधार पर धारा 193 के तहत समन जारी कर सकते थे।

17. संवैधानिक पीठ द्वारा लिए गए उपरोक्त दृष्टिकोण को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बलवीर सिंह बनाम राजस्थान राज्य के मामले में (2016) 6 एससीसी 680 में दोहराया गया था और पैरा 24 और 25 तत्काल मामले के निर्णय के लिए काफी प्रासंगिक हैं:

“24. उपर्युक्त कानूनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए, अब हम उन परिस्थितियों पर चर्चा कर सकते हैं जिनके तहत सत्र न्यायाधीश द्वारा संज्ञान लिया गया था। यहाँ एक ऐसा मामला है जहाँ मजिस्ट्रेट को सौंपी गई पुलिस रिपोर्ट में, जांच अधिकारी ने अपीलकर्ताओं को अभियुक्तों के रूप में शामिल नहीं किया था। शिकायतकर्ता ने विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष अपीलकर्ताओं के विरुद्ध भी संज्ञान लेने की प्रार्थना के साथ आवेदन दायर किया था। इस आवेदन पर विद्वान मजिस्ट्रेट ने विधिवत विचार किया और उसे अस्वीकार

कर दिया। इस प्रकार, इस मामले में स्थिति यह नहीं है कि संहिता की धारा 173(8) के तहत दायर जाँच रिपोर्ट/ आरोप पत्र में अपीलकर्ताओं को शामिल किया गया हो और अपीलकर्ताओं ने तर्क दिया हो कि उन्हें गलत तरीके से फंसाया गया है। इसके विपरीत, पुलिस ने स्वयं अपनी अंतिम रिपोर्ट में उल्लेख किया था कि अपीलकर्ताओं के विरुद्ध मामला नहीं बनता। इस पर शिकायतकर्ता ने आपत्ति जताई थी, जो चाहता था कि मजिस्ट्रेट इन अपीलकर्ताओं को भी समन करे और इसी उद्देश्य से शिकायतकर्ता ने संहिता की धारा 190 के तहत आवेदन दायर किया था। अपीलकर्ताओं ने उक्त आवेदन का उत्तर दिया था और दलीलें सुनने के बाद, आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया था। मजिस्ट्रेट। इससे पता चलता है कि मजिस्ट्रेट का आदेश पूरी तरह से सोच-समझकर पारित किया गया था जिसके तहत उन्होंने अपीलकर्ताओं के खिलाफ कथित अपराध का संज्ञान लेने से इनकार कर दिया और इसे केवल अपीलकर्ताओं के बेटे तक ही सीमित रखा। इस आदेश को चुनौती नहीं दी गई। आम तौर पर, ऐसे मामले में, यह नहीं कहा जा सकता है कि मजिस्ट्रेट ने मामले को सत्र न्यायालय में भेजते समय 'निष्क्रिय भूमिका' निभाई थी। इस प्रकार, उन्होंने पूरी तरह से सोच-समझकर और प्रक्रिया में "सक्रिय भूमिका" निभाने के बाद संज्ञान लिया था। स्थिति अलग होती अगर

मजिस्ट्रेट ने मामला करते समय शिकायतकर्ता के आवेदन को सत्र न्यायालय को भेज दिया होता। इस परिदृश्य में, हमारी राय है कि यह एक ऐसा मामला होगा जहां मजिस्ट्रेट ने अपराध का संज्ञान लिया था। इसके बावजूद, सत्र न्यायालय ने शिकायतकर्ता द्वारा उसके समक्ष किए गए समान आवेदन पर संज्ञान लिया। आम तौर पर, कार्रवाई का ऐसा तरीका स्वीकार्य नहीं होगा।

25. अगला प्रश्न यह है कि क्या यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करके ऐसे आदेश को बाधित कर सकता है। हम पाते हैं कि अपीलकर्ताओं के विरुद्ध संज्ञान लेने से इनकार करने वाले मजिस्ट्रेट का आदेश पुनरीक्षणीय है। पुनरीक्षण की यह शक्ति उच्च न्यायालय द्वारा, जो इस मामले में स्वयं सत्र न्यायालय होगा, या तो पीड़ित पक्ष द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका पर या पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा स्वप्रेरणा से भी प्रयोग की जा सकती है। इस प्रकार, सत्र न्यायालय अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में आदेश पारित करने के लिए शक्तिहीन नहीं था। यदि उसने अपीलकर्ताओं को कोई अवसर दिए बिना, उनके विरुद्ध अपराध का संज्ञान लेते हुए, आक्षेपित आदेश पारित किया होता, तो स्थिति भिन्न होती, क्योंकि विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश से इन अपीलकर्ताओं के पक्ष में एक मूल्यवान अधिकार प्राप्त हो गया था।

हालाँकि, वर्तमान मामले में, हम पाते हैं कि यहाँ अपीलकर्ताओं को, जिन्होंने शिकायतकर्ता के आवेदन का उत्तर दायर किया था, उचित अवसर दिया गया था और सत्र न्यायालय ने उनकी दलीलें भी सुनी थीं। इस कारण से, हम विवादित आदेश में हस्तक्षेप करने और इस अपील को खारिज करने के इच्छुक नहीं हैं।"

18. धर्मपाल (सुप्रा) और बलवीर सिंह (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दोनों निर्णयों का सार यह है कि मजिस्ट्रेट द्वारा मामले को सौंपने के बाद, सत्र न्यायालय को सीआरपीसी की धारा 193 के तहत मूल अधिकारिता प्रदान की जाती है और यह पुलिस द्वारा आरोप-पत्र दाखिल न किए गए अभियुक्तों के खिलाफ संज्ञान लेने के लिए सक्षम है।

19. इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने आपराधिक विविध आवेदन संख्या 38681/2019 में एक अलग दृष्टिकोण अपनाया और निम्नलिखित दृष्टिकोण अपनाया गया:

"वर्तमान मामले में चूंकि विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पहले ही संज्ञान लिया जा चुका है और आरोप-पत्र के साथ संलग्न पुलिस दस्तावेजों पर विचार करने के बाद अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप तय किए गए हैं और मुकदमा शुरू हो चुका है, इसलिए निचली अदालत के लिए मामले का आगे संज्ञान लेना और उक्त आदेश द्वारा

तीनों अभियुक्तों को तलब करना उचित नहीं होगा। उक्त आदेश द्वारा तीनों अभियुक्तों को तलब करना कानून के कानूनी प्रावधानों के अनुरूप नहीं है। निचली अदालत द्वारा सीआरपीसी की धारा 193 के तहत दूसरी बार लिया गया संज्ञान पूरी तरह से वैध और कानून द्वारा अनुमेय नहीं है। उक्त आदेश कानूनी रूप से उचित नहीं है और उक्त आदेश से यह पता चलता है कि निचली अदालत ने कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया है। उक्त आदेश रद्द किए जाने योग्य है।"

20. यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष उपरोक्त मामले में, सत्र न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया था और छूटे हुए अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप निर्धारित किए गए थे तथा मुकदमा शुरू हुआ था। नए अभियुक्तों ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष इस आदेश का विरोध किया और उक्त न्यायालय का दृढ़ मत था कि निचली अदालत के लिए, अभियुक्तों पर पुनः संज्ञान लेना और उन्हें समन करना उचित नहीं था। यह माना गया कि सत्र न्यायालय द्वारा सीआरपीसी की धारा 193 के अंतर्गत दूसरी बार लिया गया संज्ञान वैध नहीं था और कानून द्वारा अनुमेय नहीं था, इसलिए आदेश को रद्द कर दिया गया और उसे रद्द कर दिया गया।

21. इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए उपरोक्त दृष्टिकोण को रफीउशशान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य के मामले में आपराधिक

अपील संख्या **1347/2021** (एसएलपी (सीआरएल) संख्या **1752/2020** से उत्पन्न) दायर करके माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी और इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ रद्द कर दिया था:

"मजिस्ट्रेट द्वारा मामला सौंपे जाने पर सत्र न्यायाधीश को धारा 193 सीआरपीसी के तहत समन जारी करने का अधिकार है। धारा 193 सीआरपीसी सत्र न्यायालय द्वारा अपराधों के संज्ञान की बात करती है। इस धारा के मुख्य शब्द हैं कि "कोई भी सत्र न्यायालय किसी अपराध का संज्ञान आरंभिक अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय के रूप में तब तक नहीं लेगा जब तक कि मामला इस संहिता के तहत किसी मजिस्ट्रेट द्वारा उसे सौंप न दिया गया हो।"

धारा 193 सीआरपीसी के प्रावधान के अनुसार, किसी मामले को सबसे पहले मजिस्ट्रेट द्वारा सत्र न्यायालय को सौंपा जाना चाहिए। दूसरी शर्त यह है कि मामला सत्र न्यायालय को सौंपे जाने के बाद ही, सत्र न्यायालय अपने आरंभिक अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए अपराध का संज्ञान ले सकता है। यह दलील कि धारा 193 सीआरपीसी में निर्दिष्ट संज्ञान किसी अपराध के संज्ञान से नहीं, बल्कि मजिस्ट्रेट द्वारा पारित प्रतिबद्धता आदेश से संबंधित है, धारा 193 सीआरपीसी के स्पष्ट शब्दों के मद्देनजर विशेष रूप से खारिज कर दी गई कि

सत्र न्यायालय उक्त धारा के अंतर्गत अपराधों का संज्ञान ले सकता है।

किसी अपराध का संज्ञान केवल एक बार ही लिया जा सकता है। यदि मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान लेता है और फिर मामले को सत्र न्यायालय को सौंप देता है, तो अपराध का नए सिरे से संज्ञान लेने और उसके बाद समन जारी करने की कार्यवाही करने का प्रश्न विधि सम्मत नहीं है। यदि अपराध का संज्ञान लिया जाना है, तो वह मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायालय द्वारा लिया जा सकता है। संहिता की धारा 193 की भाषा बहुत स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि एक बार जब मामला मजिस्ट्रेट द्वारा सत्र न्यायालय को सौंप दिया जाता है, तो सत्र न्यायालय आरंभिक क्षेत्राधिकार और ऐसे क्षेत्राधिकार की धारणा से जुड़ी सभी बातें ग्रहण कर लेता है। इसलिए, संहिता की धारा 209 के प्रावधानों को इस रूप में समझा जाना चाहिए कि पुलिस रिपोर्ट के इस निष्कर्ष पर कि मामला सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है, मजिस्ट्रेट मामले को सत्र न्यायालय को सौंपने में एक निष्क्रिय भूमिका निभाता है। न ही मजिस्ट्रेट द्वारा आंशिक रूप से संज्ञान और सत्र न्यायाधीश द्वारा आंशिक रूप से संज्ञान लिए जाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

उपरोक्त निष्कर्षों पर पहुँचने की प्रक्रिया में, इस न्यायालय ने धर्मपाल बनाम हरियाणा राज्य (सुप्रा)

मामले में किशुन सिंह बनाम बिहार राज्य, (1993) 2 एससीसी 16 में दर्ज मामले में व्यक्त दृष्टिकोण को स्वीकार किया कि सत्र न्यायालय को किसी मामले को अपने अधीन करने के लिए, उन व्यक्तियों के अपराधों का संज्ञान लेने का अधिकार है जिनका नाम अपराधी के रूप में नहीं है, लेकिन जिनकी मामले में संलिप्तता रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री से स्पष्ट होती है। इसने विशेष रूप से यह माना कि संहिता की धारा 209 के तहत मामले को सौंपे जाने पर, सत्र न्यायाधीश पुलिस रिपोर्ट के कॉलम 2 में दर्शाए गए व्यक्तियों को, उसमें पहले से नामित व्यक्तियों के साथ, मुकदमे में उपस्थित होने के लिए समन कर सकते हैं।

दिलचस्प बात यह है कि उसी समय, न्यायालय ने धर्मपाल बनाम हरियाणा राज्य (सुप्रा) के मामले में यह भी माना कि यह मानना सही नहीं होगा कि पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर और यह देखते हुए कि मामला सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है, मजिस्ट्रेट के पास मामले को सत्र न्यायालय को विचारण के लिए सौंपने के अलावा कोई अन्य कार्य नहीं है और सत्र न्यायाधीश को उन व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही करने से पहले संहिता की धारा 319 के तहत चरण तक इंतजार करना होगा, जिनके खिलाफ सत्र न्यायालय को मामला सौंपते समय मजिस्ट्रेट द्वारा भेजे गए केस पत्रों में निहित सामग्री से प्रथम दृष्टया मामला बनता है।

XXXX

XXXX

XXXX

धर्मपाल मामले में दिए गए निर्णय के पैराग्राफ 7.4 में उठाए गए प्रश्न के अंतर्गत पूरी तरह से समाहित है। जैसा कि इस न्यायालय ने कहा है, एक बार मामला सत्र न्यायालय को सौंप दिए जाने पर, सत्र न्यायालय प्रारंभिक अधिकार क्षेत्र ग्रहण कर लेता है और संहिता की धारा 193 के अंतर्गत उचित निर्देश पारित करना उसके अधिकार क्षेत्र में होगा। वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय का निर्णय इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुरूप नहीं है। इसलिए, हम इस अपील को स्वीकार करते हैं, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द करते हैं और विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को बहाल करते हैं।

22. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष फिर से यही मुद्दा आया कि क्या धारा 319 सीआरपीसी के चरण तक प्रतीक्षा किए बिना मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 190 सीआरपीसी के तहत और सत्र न्यायाधीश द्वारा धारा 193 सीआरपीसी के तहत अभियुक्त के खिलाफ संज्ञान लिया जा सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया कि यदि न्यायालय के समक्ष उपलब्ध सामग्री से पता चलता है कि प्रथम दृष्टया ऐसे व्यक्ति की संलिप्तता है जिसके खिलाफ आरोप पत्र दायर नहीं किया गया है, तो ऐसे व्यक्ति के खिलाफ संज्ञान लिया जा सकता है। कोई भी प्राधिकारी संज्ञान

लेने पर किसी ऐसे अभियुक्त को बुलाने में मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायालय की शक्ति या अधिकार क्षेत्र को सीमित या प्रतिबंधित नहीं करता है, जिसका नाम एफआईआर या पुलिस रिपोर्ट में शामिल नहीं हो सकता है। नाहर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में । (आपराधिक अपील संख्या **443/2022**) 16.03.2022 को तय किया गया, इसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 20 में निम्नानुसार माना है:

रघुवंश दुबे (सुप्रा), एसडब्ल्यूआईएल लिमिटेड (सुप्रा) और धर्मपाल (सुप्रा) के मामलों में , पुलिस रिपोर्ट के आधार पर किसी अपराध का संज्ञान लेने वाले न्यायालय या मजिस्ट्रेट की शक्ति या अधिकार क्षेत्र, पुलिस रिपोर्ट में नामित न किए गए अभियुक्त को अपराध की प्रतिबद्धता से पहले समन करने की शक्ति का विश्लेषण किया गया है। इस बिंदु पर एकमत दृष्टिकोण, इस तथ्य के बावजूद कि क्या संहिता की धारा 190 के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिया जाता है या धारा 193 के तहत सत्र न्यायालय द्वारा अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया जाता है, यह है कि उपरोक्त न्यायिक अधिकारियों को तब तक इंतजार नहीं करना होगा जब तक कि मामला उस चरण तक न पहुँच जाए जब संहिता की धारा 319 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किसी व्यक्ति को अभियुक्त के रूप में समन करने के लिए किया जा सके, लेकिन पुलिस रिपोर्ट में उसका

नाम इस रूप में नहीं है। हम पहले ही अपनी राय व्यक्त कर चुके हैं कि समन जारी करने का ऐसा अधिकार क्षेत्र ऐसे व्यक्ति के संबंध में भी प्रयोग किया जा सकता है जिसका नाम पुलिस रिपोर्ट में, चाहे अभियुक्त के रूप में हो या उसके कॉलम (2) में, बिल्कुल भी न हो, यदि मजिस्ट्रेट संतुष्ट हो कि रिकॉर्ड में ऐसी सामग्री मौजूद है जो प्रथम दृष्टया उसकी संलिप्तता को प्रकट करती है। अपराध। कोई भी प्राधिकारी संज्ञान लेने पर किसी अभियुक्त को समन भेजने में मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायालय की शक्ति या अधिकार क्षेत्र को सीमित या प्रतिबंधित नहीं करता है, जिसका नाम एफआईआर या पुलिस रिपोर्ट में शामिल नहीं हो सकता है।

23. इस न्यायालय ने इन प्राधिकारियों में परिलक्षित विधि की स्थिति को ध्यान में रखा है। अतः, धर्मपाल (सुप्रा), बलवीर सिंह (सुप्रा), रफीउल्लाह (सुप्रा) और नाहर सिंह (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के प्रामाणिक निर्णयों से यह स्पष्ट है कि सत्र न्यायालय को धारा 193 सीआरपीसी के अंतर्गत उन व्यक्तियों के विरुद्ध संज्ञान लेने का अधिकार है जिन्हें पुलिस ने छोड़ दिया है और जिन्हें जाँच एजेंसी ने आरोप-पत्र के साथ अभियुक्त के रूप में प्रस्तुत नहीं किया है।

24. वर्तमान मामले में, चूँकि ट्रायल कोर्ट द्वारा याचिकाकर्ता संख्या 4 से 9 के विरुद्ध प्रथम दृष्टया साक्ष्य पाए गए थे, इसलिए धारा 319

सीआरपीसी के तहत निर्धारित चरण की प्रतीक्षा किए बिना, धारा 193 सीआरपीसी के तहत निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए उनके विरुद्ध संज्ञान लेना उचित ही है। अतः, इस न्यायालय का मत है कि याचिकाकर्ता संख्या 4 से 9 के संबंध में दिनांक 11.02.2019 के आक्षेपित आदेश में कोई विकृति नहीं है और यह सही और वैध पाया जाता है, इसलिए इसे बरकरार रखा जाता है।

25. अब, यह न्यायालय इस तर्क के पहले भाग पर निर्णय करेगा कि "क्या याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के विरुद्ध 11.02.2019 को पुनः संज्ञान लिया जा सकता है, विशेषकर, जब मजिस्ट्रेट द्वारा 05.10.2018 के आदेश के तहत उनके विरुद्ध पहले ही संज्ञान लिया जा चुका है"।

26. मजिस्ट्रेट ने उचित विवेक के बाद, दिनांक 05.10.2018 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 323, 341, 325, 308 और 379 के अंतर्गत संज्ञान लिया और मामले को सत्र न्यायालय को सौंप दिया क्योंकि धारा 308 के अंतर्गत अपराध सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था। संज्ञान के इस आदेश को शिकायतकर्ता ने किसी भी सक्षम न्यायालय में चुनौती नहीं दी। यह नहीं कहा जा सकता कि मजिस्ट्रेट ने मामले को सत्र न्यायालय को सौंपते समय "निष्क्रिय भूमिका" निभाई थी। उन्होंने उचित विवेक के बाद

संज्ञान लिया और इस प्रक्रिया में "सक्रिय भूमिका" निभाई। मजिस्ट्रेट ने आईपीसी की धारा 308 के तहत याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के खिलाफ संज्ञान लिया था और फिर से ट्रायल कोर्ट, यानी अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने उन्हीं आरोपियों, यानी याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के खिलाफ आईपीसी की धारा 307 के तहत आईपीसी के अन्य अपराधों के साथ संज्ञान लिया था, इस तरह की कार्रवाई स्वीकार्य नहीं होगी।

27. याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के खिलाफ मजिस्ट्रेट द्वारा आईपीसी की धारा 323, 341, 325, 308 और 379 के तहत दिनांक 05.10.2018 के आदेश के तहत पहले ही संज्ञान लिया जा चुका है, उसके बाद उसी याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के खिलाफ अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश की अदालत द्वारा आईपीसी की धारा 149 के साथ धारा 148, 323, 341, 325, 379 और 307 के तहत दिनांक 11.02.2019 के आदेश के तहत फिर से संज्ञान लिया गया है और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश का ऐसा कृत्य दो अदालतों द्वारा अलग-अलग चरणों में कुछ अलग-अलग अपराधों के लिए दो बार संज्ञान लेने के समान है। इस प्रकार अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने आरोपित आदेश द्वारा याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के खिलाफ आईपीसी की धारा 307 के तहत ताजा संज्ञान लिया है, इसलिए इस तरह की कार्रवाई को कानून के अनुसार नहीं माना जा सकता है। निस्संदेह, धारा 209 सीआरपीसी के संदर्भ में मजिस्ट्रेट द्वारा मामले को

सत्र न्यायालय को सौंपने पर , अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश सहित सत्र न्यायालय की शक्तियों पर प्रतिबंध हट जाएंगे क्योंकि उस स्थिति में सत्र न्यायालय/अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश "मूल क्षेत्राधिकार" के न्यायालय के रूप में ऐसी शक्ति का प्रयोग करेंगे। लेकिन धारा 193 और 209 सीआरपीसी को संयुक्त रूप से पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि ऐसी स्थिति जिसमें आंशिक संज्ञान मजिस्ट्रेट द्वारा लिया गया है और आंशिक संज्ञान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा लिया गया है , कानूनी रूप से स्वीकार्य नहीं माना जा सकता है। इसलिए, याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के खिलाफ पारित दिनांक 11.02.2019 का अनुवर्ती आदेश कानून की नजर में कानूनी रूप से टिकने योग्य नहीं है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष:

28. ऊपर की गई चर्चाओं के मद्देनजर, दिनांक 11.02.2019 का आरोपित आदेश रद्द किया जाता है और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 3 के संबंध में रद्द कर दिया जाता है और इसे याचिकाकर्ता संख्या 4 से 9 के संबंध में बरकरार रखा जाता है। हालांकि, यह आदेश अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के लिए रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर उचित अपराधों के लिए आरोपों या निर्वहन पर आदेश पारित करने के चरण में

धारा 227 और 228 सीआरपीसी के तहत अपनी शक्तियों को लागू करने में कोई कठिनाई पैदा नहीं करेगा।

29. दिनांक 11.02.2019 के आदेश के प्रभावी भाग को पारित करते हुए, निचली अदालत ने याचिकाकर्ता संख्या 4 से 9 को गिरफ्तारी वारंट के माध्यम से तलब किया था। इस अदालत ने उनकी गिरफ्तारी पर रोक लगाते हुए अंतरिम आदेश पारित करके उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा की थी। अतः, यह अदालत निचली अदालत को याचिकाकर्ता संख्या 4 से 9 की उपस्थिति गिरफ्तारी वारंट के बजाय जमानती वारंट के माध्यम से सुनिश्चित करने का निर्देश देना उचित समझती है। उनके गिरफ्तारी वारंट को जमानती वारंट में परिवर्तित किया जाता है।

30. उपरोक्त आदेश में संशोधन के साथ , यह याचिका समाप्त की जाती है।

31. स्थगन आवेदन और सभी लंबित आवेदन, यदि कोई हों, का भी निपटारा किया जाता है।

(अनूप कुमार ढांड) ,जे

आयुष शर्मा/20

अस्वीकरण: इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाषा में कर सकेंगे एवं यह

किसी अन्य प्रयोजन में काम नहीं ली जायेगी। सभी आधिकारिक एवं व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेज़ी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निशपादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।



अधिवक्ता अविनाश चौधरी